किताबों से सीखते बच्चे

दिनेश पटेल

चित्र : दिनेश पटेल

कोरोना महामारी के चलते पिछले वर्ष देशभर के लाखों बच्चों का भारी नुक़सान हुआ है जिसकी भरपाई कर पाना लगभग असम्भव है। ऐसे में सोचा गया कि क्यों न मोहल्ला कक्षाओं के ज़रिए इन बच्चों के साथ कुछ रचनात्मक चीज़ें की जाएँ। इससे उनके सीखने का तारतम्य भी बना रहेगा और वे पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया से जुड़े भी रह पाएँगे। इसी सोच के मद्देनज़र अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन एवं शासन के सहयोग से मध्य प्रदेश के धार ज़िले की धरमपुरी तहसील के 11 शासकीय प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों की पढ़ने-लिखने की क्षमता को सशक्त बनाने हेतु अक्तूबर 2020 से पुस्तकालयों का संचालन किया जा रहा है।

इन शासकीय विद्यालयों में पुस्तकालय संचालन का प्रमुख मक़सद था– स्कूली बच्चों तक अच्छा साहित्य उपलब्ध कराना, जिससे उन्हें पढ़ने-लिखने व अभिव्यक्ति के अवसर मिलें ताकि वे अपने पढ़ने-लिखने के कौशल के स्तर को कुछ हद तक बढ़ा सकें। इन क्षमताओं के पोषण के लिए हमने इन बच्चों के साथ लिखने-पढ़ने एवं उनको स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर मुहैया कराने के लिए समय-समय पर कुछ रचनात्मक गतिविधियाँ भी कीं जिनसे उनकी क्षमताओं में होने वाली वृद्धि को किसी-न-किसी रूप में आँका जा सके। पुस्तकालय की किताबों पर आधारित इन गतिविधियों में पढ़ी गई किताबों पर विस्तृत चर्चा, अपने रोज़मर्रा

चित्र : दिनेश पटेल

के अनुभवों को मोहल्ला क्लास में अभिव्यक्त करना और उनपर बातचीत करना, इन अनुभवों को लेखन में तब्दील करना, स्वतंत्र चित्रकारी, कहानी सुनाना, चित्रों से कहानी बनाना, आदि चीज़ें शामिल थीं। कुछ स्कूलों के चुनिन्दा बच्चों से पढ़ी गई किताबों के सन्दर्भ में अनौपचारिक रूप से हुई दिलचस्प चर्चा से मज़ेदार बातें भी हमें पता चलीं।

अनुभव बताते हैं कि बच्चे किताबों से बहुत-सी चीज़ें एक साथ सीखते हैं। पिछले छह माह में जब भी स्कूल में उनके साथ गतिविधियाँ की गईं, उनमें बच्चों की भागीदारी काफ़ी रोचक और रचनात्मक रही। बच्चे कई चीज़ें ख़ुद से सीखते हैं। पढ़ने-लिखने की इन रचनात्मक गतिविधियों में नियमित और सक्रिय भागीदारी के चलते बच्चों में अपेक्षाकृत अधिक सक्रियता देखने में आई है। बेशक उनका पढ़ना-लिखना प्रभावित हुआ है लेकिन जिन स्कूलों के शिक्षक साथियों ने इस दौरान भी बच्चों के साथ काम को जारी रखा है उनके बच्चों में थोड़ी उम्मीद ज़रूर दिखाई देती है। ख़ासतौर से पुस्तकालय की किताबों को पढ़ना, पढ़कर एक दूसरे को सुनाना और अन्य कोई कहानी, क़िस्सा या वार्ता, जो बच्चे अपनी भाषा में जानते हैं; को लेकर चर्चा करना काफ़ी दिलचस्पी जगाने वाला अनुभव रहा। इस तरह की गतिविधियों से बच्चे काफ़ी ऊर्जा हासिल करते हैं। प्रारम्भिक चरण में हालाँकि यह प्रक्रिया धीमी चली लेकिन बाद में इसमें काफ़ी तेज़ी आई। जब भी हम स्कूल में पहुँचते, बच्चे पहले से लिखी अपनी रचनाएँ हमें थमा देते। उनकी इन रचनाओं में उनके गाँव एवं आसपास के क्षेत्र की संस्कृति की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। झोला पुस्तकालय की किताबों के बहाने हुई अनौपचारिक चर्चाओं में अनायास ही आसपास के हाट-मेले, जतराएँ, धार्मिक तीज-त्योहारों एवं रीति-रिवाज, परम्पराएँ, आदि शामिल हो जाया करतीं। यही अनुभव बाद में कुछ बच्चों के स्वतंत्र लेखन का हिस्सा भी बने।

बानगी के तौर पर बच्चों के लेखन का एक उदाहरण देखते हैं, जो उन्होंने भीली-हिन्दी दोनों भाषाओं में मिश्रित रूप में लिखने का प्रयास किया है :

मातृभाषा (भीली) में अनुभव लेखन

कक्षा चौथी और पाँचवीं के बच्चों से स्वतंत्र लेखन की गतिविधि पर मैंने चर्चा की और पूछा कि वे अपने घरों में त्योहारों, शादी-ब्याह व मेले / जतरा के समय में क्या-क्या करते हैं? कौन-से गीत या भजन गाते हैं? थोड़ा हँसते हुए जो उन्होंने बताया उसमें से कुछ ही शब्द मेरे पल्ले पड़े। पाँचवीं की एक बालिका ने एक सुन्दर लोकगीत बड़ी सुरीली आवाज़ में गाकर सुनाया लेकिन वह भी मेरी समझ के बाहर था, क्योंकि मुझे उनकी भाषा नहीं आती थी। बहरहाल, मैंने कहा कि वे अपनी मर्ज़ी से कुछ भी लिखें लेकिन लिखें ज़रूर। तब उन्होंने धीरे-धीरे लिखना शुरू किया। इस पूरी प्रक्रिया में मैंने देखा कि जब सभी छात्र-छात्राएँ लिख रहे थे तो वे आपस में एक दूसरे से खुसुर-पुसुर कर रहे थे। और उनके चेहरे पर जो ख़ुशी की चमक थी, देखने लायक़ थी। क्यों न हो भला, आज उन्हें अपनी मर्ज़ी का काम जो मिला था जिसकी उन्होंने कभी उम्मीद नहीं की थी। मैंने सोचा था कि दो-चार बच्चे ही लिख पाएँगे लेकिन जब लिखने के लिए पेपर बाँट रहा था तो देखा कि सभी बच्चे एक साथ मुझसे काग़ज़ माँगने लगे कि सर, हमें भी लिखना है। ख़ैर, अन्त में लगभग पौन घण्टे की इस क़वायद में बच्चों ने जो कुछ भी लिखा उसकी गुणवत्ता को थोड़ी

देर के लिए छोड़ दें, तो आप आश्चर्य करेंगे कि बच्चों ने बेहद बिन्दास तरीक़े से उन गीतों को लिखा जो रोमांच और प्यार की भावना से इस कदर भरे हुए थे कि एक बारगी लग सकता है कि ये अगर तथाकथित 'सभ्य समाज' से आने वाले शिक्षक या किसी वयस्क को पढ़कर सुनाए जाते तो उनकी क्या और किस तरह की प्रतिक्रिया होती, कहना मुश्किल है। क्योंकि जिस तथाकथित 'सभ्य समाज' में हम रहते हैं उसमें इस तरह की शादी-ब्याह और प्यार-मोहब्बत से जुड़ी बातें सहज स्वीकार्य नहीं हैं। हालाँकि आदिवासी भील समाज में प्यार भरे लोकगीत गाना जिनमें ज़रूरी तौर पर नृत्य भी शामिल है, कोई ग़लत या अनैतिक बात नहीं है। ये उनकी संस्कृति का अहम हिस्सा हैं और शायद इसलिए उनकी भाषा में भी इसका अक्स दिखाई पड़ता

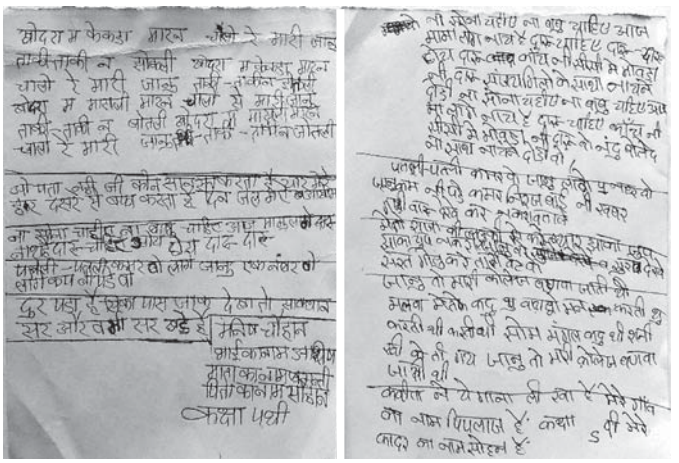

छात्र-छात्राओं द्वारा लिखे गए गीतों की बानगी

है। हर समाज की अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक बुनावटें और भाषाएँ होती हैं। उसी में वे अपने समाज का तानाबाना बुनते हैं। भाषा तो समाज बनाता है। भाषा संस्कृति की संवाहक होती है। भाषा ही है जिससे हर समाज अपने स्थानीय ज्ञान के ज़रिए दुनिया-जहान के बाक़ी ज्ञान से रूबरू होता है। बच्चों की इस भाषा को शिक्षण का आधार बनाने से ही हम एक बेहतर और रचनात्मक समाज की नींव डाल सकेंगे और ये बात शिक्षक को ज़रूरी तौर पर समझनी और समझानी होगी। अगर हम इसी तरह से हाशिए के इन समाजों के अपने ज्ञान को स्कूली ज्ञान की सीमा के दायरे में शामिल नहीं करेंगे तो हमारे उन संवैधानिक मूल्यों का क्या होगा जो सबके लिए बेहतर शिक्षा और बेहतर जीवन यापन की बात करते हैं!

शायद इसीलिए इन बच्चों ने भी अपनी इन अन्दरूनी बातों को मुझसे छिपाकर लिखना चाहा था। पर ये क्या कम था, जिसकी मैंने कल्पना तक नहीं की थी; कि बच्चों ने मेरी बात पर भरोसा करके अपनी बात पूरी ईमानदारी से लिखने की कोशिश की। इससे भी महत्त्वपूर्ण और रेखांकित की जाने वाली बात ये कि उन्हें अपनी भीली और हिन्दी दोनों भाषाओं में मिलाकर लिखने की आज़ादी जो हासिल हुई उससे इन बच्चों ने अपने अन्दर की भावनाओं को बाहर आने का मौक़ा दिया। सैद्धान्तिक तौर पर यह बात इसलिए भी महत्त्वपूर्ण और ज़रूरी है कि बच्चे अपनी ख़ुद की भाषा में अपने ज्ञान का सृजन जितना बेहतर हासिल करने की क्षमता रखते हैं उतना किसी दूसरी भाषा में नहीं। *एनसीएफ़ 2005* इस बात को रेखांकित करता है, "बहुभाषिकता, जो बच्चे की अस्मिता का निर्माण करती है और जो भारत के भाषा-परिदृश्य का विशिष्ट लक्षण है, उसका संसाधन के रूप में उपयोग, कक्षा की कार्यनीति का हिस्सा बनाना तथा उसे लक्ष्य के रूप में रखना रचनात्मक भाषा शिक्षक का कार्य है। यह केवल उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल नहीं है बल्कि इससे यह भी सुनिश्चित हो सकता है कि हर बच्चा स्वीकार्य और संरक्षित महसूस करे और भाषिक पृष्ठभूमि के आधार पर किसी को पीछे न छोड़ा जाए।"

उनके लेखन में जब ये सब चीज़ें सहज ढंग से बग़ैर किसी अतिरिक्त प्रयास के दर्ज हो रही थीं तब क्या उन्हें ये बात मालूम थी

कि वे लेखन की इस प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के ज़रिए, जो एक आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र का सबसे अहम और बुनियादी पहलू है, ज्ञान की उस परिधि में दाख़िल हो पाने की तरफ़ बढ़ रहे थे जिसे हमेशा से इस हाशियाकृत समाज से दूर ही बनाए रखने की साज़िशें होती रही हैं। दरअसल कृष्ण कुमार कहते हैं, "स्कूल बचपन और सामाजिक जीवन को एक दूसरे से अलग रखने वाली सीमा बन गई है। स्कूल की चारदीवारी के भीतर ऐसी जानकारी बच्चों को दी जाती है जिसका दैनिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। कहने को स्कूल बच्चों की भाषा का विकास करता है पर भाषा जीवन के सतत अनुभव से ही अर्थ ग्रहण करती है। भारतीय स्कूल पर पाठ्यपुस्तकों का इतना कड़ा नियंत्रण है कि स्कूल के बाहर स्थित समाज की जीवन्त भाषा कक्षा में प्रवेश नहीं कर पाती।"

लेखन की इस प्रक्रिया में बच्चों ने जो आनन्द लिया उसकी मिसाल पिछले छः माह से भी अधिक समय में इस स्कूल में मुझे कम ही देखने को मिली। दरअसल ये उनकी ख़ुद की ज़िन्दगी की सांस्कृतिक झलकियों के वे नमूने थे जो ज़िन्दगी को बाक़ी गतिविधियों की तुलना में अपेक्षाकृत कहीं अधिक सुकून और रोमांच से भर देते हैं। और यहीं से रचनात्मकता के बीज फूटते हैं। ये बात आज मैंने इन बच्चों के चेहरों पर इस पूरी प्रक्रिया के दौरान बहुत नज़दीक और सहज ढंग से देखी। मुझे समझ आया कि अपनी संस्कृति में लोग कितने गहरे तक रचे-बसे होते हैं। *एनसीएफ़ 2005* कहता है, "हमारे जगत का जो बोध हमें होता है उसे निर्धारित करने वाले संज्ञानात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक पैटर्न मुख्यतः उस भाषा की संरचना द्वारा निर्मित, सूत्रित, और यहाँ तक कि निर्देशित होते हैं, जिस भाषा को हम बोलते हैं...। एक तरफ़ यदि भाषा हमारी विचार प्रक्रिया को व्यवस्थित करती है तो दूसरी तरफ़ यह हमें मुक्त भी करती है और हमें ज्ञान व कल्पना की अनखोजी दुनिया में ले जाती है।"

एक महत्त्वपूर्ण चीज़ इससे ये निकली कि बच्चे लिखने की प्रक्रिया की तरफ़ बढ़ने लगे

चित्र : दिनेश पटेल

हैं। वे ये समझ पाने की तरफ़ क़दम बढ़ा पाए हैं कि कुछ लिखना व चित्र बनाना सचमुच काफ़ी दिलचस्प और रोचकता से भरपूर होता है। चूँकि इसमें सीखना जैसी चीज़ ज़रूरी तौर पर शामिल रही इसलिए बच्चों को और भी मज़ा आया।

पुस्तकालय से जुड़े कुछ अन्य अनुभव

पुस्तकालय के होने से बच्चों की किताबें पढ़ने में रुचि भी बढ़ी है। प्राथमिक स्कूल, जहाँगीरपुरा के शिक्षक बताते हैं कि, "जब से मैंने अपने बच्चों को किताबें दी हैं, उनमें पढ़ने की इतनी ज़बरदस्त ललक जगी है कि अब वे हमेशा किताबों की माँग करते हैं। लॉकडाउन में मैंने पूरे समय एक मन्दिर में मोहल्ला कक्षा लगाई है। लॉकडाउन नहीं होता तो शायद मेरी दूसरी कक्षा के बच्चे भी अच्छे-से किताब पढ़ रहे होते। फिर भी दूसरी के कुछ बच्चों को मैंने धीरे-धीरे पढ़ना सिखा दिया है। स्कूल आने में मुझे अगर थोड़ी देर भी हो जाए तो बच्चे अपने समय से आकर कक्षा में बैठ जाते और मेरा इन्तज़ार करते हैं।"

ऐसे ही एक और अनुभव में एक अन्य प्राथमिक स्कूल की शिक्षिका बताती हैं, "बच्चों

को पढ़ाने में पुस्तकालय की किताबों ने मेरी बहुत मदद की है। बच्चे अपने-आप ही इन किताबों को उठाकर पढ़ने लगते हैं और एक दूसरे को पढ़कर सुनाते भी हैं। मज़े की बात तो ये कि उन्हें इन किताबों की कहानियाँ और कविताएँ काफ़ी मज़ेदार लगती हैं। वे कक्षा में, स्कूल में चलते-फिरते इन कविताओं को गुनगुनाते रहते हैं। जो कविता पोस्टर हमें मिले थे उन्हें बच्चों ने कब का पढ़ लिया और अभी उन्हें सभी कविताएँ याद हैं। दूसरी के कई बच्चे इन पोस्टरों की कविताओं को पूरा पढ़ लेते हैं। इससे उनमें सीखने की रुचि बढ़ गई है। अब तो वे इन्तज़ार करते हैं कि उन्हें नई-नई किताबें पढ़ने के लिए मिलें। इससे मेरा काम भी काफ़ी आसान हो गया।"

प्राथमिक विद्यालय, टाकीजपुरा की शिक्षिका का अनुभव भी रोचक है। वे उनके स्कूल में चल रहे पुस्तकालय के बारे में काफ़ी उत्साह से बताती हैं, "मेरे बच्चे कविता-कहानियों की किताबों में ख़ूब रुचि लेते हैं और जिनको पढ़ना नहीं आता वे भी इन किताबों के चित्रों को देखकर अपनी मर्ज़ी से कुछ-न-कुछ कहानियाँ बनाते रहते हैं। इनमें से कुछ बच्चे तो एक दूसरे की मदद से धीरे-धीरे पढ़ना भी सीख रहे हैं। जो बच्चे थोड़ा पढ़ना जानते हैं वे तेज़ी से सीख रहे हैं और जो ठीक से पढ़ लेते हैं वे उन बच्चों को सिखाते हैं जो अभी ठीक से पढ़ना नहीं जानते। पाठ्यपुस्तक की बजाय पुस्तकालय की किताबों में अच्छे-अच्छे चित्र, कहानियाँ और कविताएँ होती हैं इसलिए वे बच्चों को आकर्षित करती हैं।"

चित्र : दिनेश पटेल

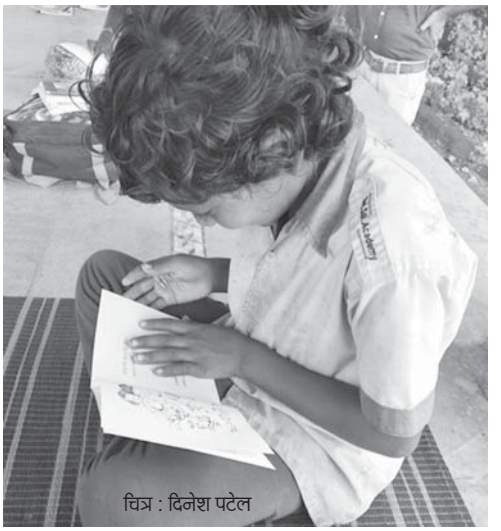
चित्र : दिनेश पटेल

इन तीन स्कूलों का ज़िक्र इसलिए किया क्योंकि इन स्कूलों के बच्चों में एक अलग ही उमंग और उत्साह है। वे अपेक्षाकृत अधिक आत्मविश्वासी हो रहे हैं। इसकी प्रमुख वजह शायद यह रही हो कि औपचारिक रूप से स्कूलों के अनुशासन से इतर बच्चों को लॉकडाउन के बहाने थोड़ी अधिक आज़ादी मिल गई। दूसरी बात यह कि इस तरह की महामारी के दौर में शिक्षक साथियों ने भी बच्चों पर अधिक ज़ोर डालने की बजाय उनकी प्रशंसा की ताकि वे मोहल्ला कक्षाओं में नियमित रूप से आते रहें, और उनका सीखना नियमित रहे। शिक्षकों ने बच्चों को शाबासी दी, हौसला बढ़ाया, और घर-घर जाकर सम्पर्क के ज़रिए मोहल्ला कक्षाओं में आने के लिए बच्चों को प्रेरित भी किया। स्वाभाविक है, ऐसे में बच्चों का जितना भी फ़ायदा हो सकता था हमने मिलकर करने की कोशिश की। हमारी स्कूली व्यवस्था में बच्चों के लिए इस तरह की प्रशंसाओं व शाबासी के लिए फ़िलहाल जो दायरा है उसे और व्यापक बनाने की शायद कोई सम्भावना निकल पाए।

प्राथमिक विद्यालय के एक और शिक्षक बताते हैं, "जितने भी बच्चे मोहल्ला कक्षाओं में आते हैं, सभी को पुस्तकालय की किताबें पढ़ने

चित्र : दिनेश पटेल

में काफ़ी आनन्द आता है। बस स्कूल खुल जाते तो कुछ और चीज़ें सीखने की कोशिश होगी कि कैसे बच्चों को इन किताबों से पढ़ने-लिखने के साथ-साथ अन्य गतिविधियाँ सिखाई जा सकती हैं। बच्चों को इन किताबों की कहानियाँ पढ़ने और चित्र देखने में बहुत मज़ा आता है। इतनी अच्छी और विविधता वाली कविताएँ, कहानियाँ एवं चित्र स्कूल की पाठ्यपुस्तक में नहीं होते, इसलिए भी शायद बच्चों को पढ़ने में मज़ा नहीं आता।"

इन चुनिन्दा अनुभवों से एक बात जो स्पष्ट तौर पर नज़र आती है वो ये कि जहाँ-जहाँ पर शिक्षक साथियों ने बच्चों के प्रति थोड़ी अधिक सक्रियता और सरोकार दिखाया है, वहाँ बच्चों की किताब पढ़ने की आदतें धीरे-धीरे बनने लगी हैं। उक्त उदाहरण यह भी बताते हैं कि अगर नियमित रूप से पढ़ने के लिए इन बच्चों को किताबें उपलब्ध होती रहें तो बच्चे भी ख़ुद से पढ़ना सीखने की ओर अग्रसर होते हैं और बाद में ये एक आदत की तरह से उनकी ज़िन्दगी का एक बेहतरीन और ज़रूरी हिस्सा बन जाता है। कुछ हद तक वे अपने शिक्षक से इसकी माँग करते भी देखे जाते हैं। ख़ासकर ऐसे स्कूलों में जहाँ शिक्षक और बच्चों के बीच का रिश्ता अपेक्षाकृत बेहतर, लचीला और संवेदनशील बन पाया हो। और हम सब भी तो यही चाहते हैं।

दिनेश पटेल को भाषा, भाषा शिक्षण एवं कला शिक्षा में एकलव्य फ़ाउण्डेशन के साथ काम करने का तीन दशक का अनुभव है। छत्तीसगढ़ सरकार के साथ डीएड पाठ्यक्रम निर्माण में सक्रिय सहभागिता। साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी। शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर लेखन। शौक़िया चित्रकारी। पिछले ढाई साल से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, धामनोद, ज़िला धार में हिन्दी भाषा के स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : dinesh.patel@azimpremjifoundation.org